

किया है।

1. जलता है यह जीवन पतङ्ग
जीवन कितना? अति लघु क्षण,
ये शलभ पुंज से कण कण,
तृष्णा वह अनलशिखा बन-
दिखलाती रक्तिम यौवन।

जलने की क्यों न उठे उमंग?

शब्दार्थ—जीवन-पतंग = जीवन रूपी पतंगा। अति लघु = बहुत छोटा। पुंज = राशि। तृष्णा = इच्छा। अनिलशिखा = अग्नि की लौ। उमंग = इच्छा।

व्याख्या—कलिंग के युद्ध की समाप्ति के बाद होने वाले मानव-संहार से आतंकित अशोक सोच रहा है—मानव-जीवन अत्यंत क्षणिक है। कवि कहता है कि यह जीवनरूपी पतंग सदैव जलता रहता है। यह जीवन अत्यन्त क्षणिक है। इस जीवन का लघु क्षण शलभ के क्षणिक जीवन के समान है। यह शलभ अग्नि की शिखा में जलता है और यह जीवन तृष्णा की अग्नि शिखा में जलकर राख हो जाता है। यौवनकाल में उत्पन्न मानवता इन सांसारिक सुखोपलब्धियों की ओर उन्मुख करती है। अतः इस तृष्णा की अग्नि में जलने की उमंग उठना स्वाभाविक ही है।

विशेष—(1) 'जीवन पतंग' में रूपक अलंकार है। (2) जीवन की क्षणिकता का रहस्य भारतीय साहित्य में भरा पड़ा है।

2. है ऊँचा आज मगध शिर-
पदतल में विजित पड़ा गिर,

दूरागत 'क्रन्दन ध्वनि फिर
क्यों गूँज रही है अस्थिर-

कर विजयी का अधिमान भंग ?

शब्दार्थ—विजित = विजय किया हुआ। दूरागत = दूर से आने वाली। क्रन्दन-ध्वनि = विलाप की आवाज। भंग = तोड़ना।

व्याख्या—अशोक चिंतन करता है कि आज मगध का सिर कलिंग पर विजय प्राप्त करने के उपरांत ऊँचा उठ गया है। आज विजय किया हुआ अर्थात् पराजित या हारा हुआ कलिंग उसके चरणों में पड़ा हुआ है। फिर भी दूर से आने वाला विलाप का स्वर बार-बार क्यों आकर मन को अस्थिर कर रहा है ? ऐसा प्रतीत होता है मानो यह दीन-दुखियों की चीत्कार मगध देश की विजय को चुनौती दे रही हो। वास्तव में इतना अधिक जन-नाश करने के उपरान्त इस विजय का कोई लाभ नहीं।

विशेष—यहाँ पर अशोक की चिंता को व्यक्त किया गया है कि लाखों व्यक्तियों का नाश करने के उपरान्त यह विजय कैसी ? क्योंकि विजय के उल्लास की ध्वनि से अधिक तो दीन-दुखियों का दूरागत चीत्कार ही गूँज रहा है कि जो मानो विजय का उपहास उड़ा रहा है।

3. इन प्यासी तलवारों से,
इनकी पैनी धारों से,
निर्दयता की मारों से,
उन हिंसक हुंकारों से,

नतमस्तक आज हुआ कलिंग।

शब्दार्थ—पैनी = तेज। निर्दयता = कठोरता। नतमस्तक = माथा झुका हुआ, हारा हुआ।

व्याख्या—अशोक की चिंता व्यक्त करते हुए कवि कहता है—मगध के वीर सैनिकों की तलवारें रक्तपान करना चाहती थीं अर्थात् रक्त पीने की उनमें प्यास थी। इन तलवारों ने अपनी तेज धार से शत्रुओं को बड़ी कठोरता के साथ काट डाला अर्थात् उनको समाप्त कर दिया। उस समय मगधवीर रण की हुंकार से उत्तेजित होते गये और उनकी मार-काट तेज होती गयी। इसके परिणामस्वरूप आज कलिंग देश कुचला हुआ या हारा हुआ पड़ा है।

विशेष—इन पंक्तियों में कवि ने मगध वीरों के रणकौशल तथा उनके वीरता के दर्प को अंकित किया है। साथ ही युद्ध का भयानक और बर्बर परिणाम भी स्पष्ट हो जाता है।

4. यह सुख कैसा शासन का?
 • शासन रे मानव मन का!
 गिरि भार बना सा तिनका,
 यह घटाटोप दो दिन का-
 फिर रवि शशि किरणों का प्रसंग!

शब्दार्थ—गिरि-भार = पर्वत के समान बोझिल। घटाटोप = घनघोर घटाएँ।
 प्रसंग = क्रम।

व्याख्या—अशोक सोच रहा है कि यह शासन का सुख भी कैसा है? अर्थात् इतने रक्तपात के उपरांत प्राप्त किये हुए चीत्कार से शासन का क्या सुख मिल सकता है? वास्तव में शासन प्रदेश पर नहीं बल्कि मनुष्य के मन पर ही होना चाहिए। यह शासन तिनके के समान तुच्छ है, किन्तु इसका दायित्व पर्वत से भी अधिक भारी है। ये घनघोर घटाओं जैसी शक्तियाँ भी स्थिर नहीं होती। वास्तव में इनका अस्तित्व भी दो दिन का ही है। क्योंकि इन घटाओं के नष्ट हो जाने पर सूर्य और चन्द्र की किरणें पृथ्वी पर क्रम से पड़ती रहेंगी अर्थात् एक के अस्त होने पर दूसरे का उदय होगा। यही जीवन का निश्चित क्रम है।

विशेष—(1) यहाँ बादल, रवि, शशि किरणों के रूप में जग की अस्थिरता का वर्णन कवि ने किया है। (2) 'मानव मन' पद में छेकानुप्रास तथा 'गिरिभार बना सा तिनका' पद में उपमा अलंकार है।

5. यह महादम्भ का दानव-
 पीकर अनङ्ग का आसव-
 कर चुका महा भीषण रव,
 सुख दे प्राणी को मानव

तजविजय पराजय का कुढंग।

शब्दार्थ—महादम्भ = महाअभियान। दानव = राक्षस। आसव = शराब।
 भीषण = भयंकर। रव = शोर। कुढंग = बुरा ढंग।

व्याख्या—यहाँ अशोक के व्यक्तित्व में कवि का स्वर ही प्रमुख रूप से बोल रहा है कि उसके महा अभियान का राक्षस अब तक कामनाओं की शराब पीकर अधिक रुधिरपान कर चुका है। इसके कारण सर्वत्र भयंकर चीत्कार हो रहा है। अतः हे मानव, तू अपनी हार और जीत के इस बुरे रूप को छोड़ दे और आज से ही प्राणिमात्र को सुख देने की प्रतिज्ञा कर। अर्थात् हार-जीत का यह ढंग अर्थात् युद्ध कदापि अच्छा नहीं है। इसे त्यागकर ही जीवन सुखी हो सकता है।

विशेष—यहाँ पर मानव मात्र को सुख देने की अभिलाषा को व्यक्त किया गया है।

6. संकेत कौन दिखलाती,
मुकुटों को सहज गिराती,
जयमाला सूखी जाती,
नश्वरता गीत सुनाती,
तब नहीं थिरकते हैं तुरंग।

शब्दार्थ—मुकुटों = राज्याध्यक्षों। जयमाला = विश्व की माला। नश्वरता = नाश।
तुरंग = घोड़े, इन्द्रियाँ। **थिरकना** = हिलना।

व्याख्या—नियति की अदृश्य सत्ता और शक्ति के बारे में अशोक सोच रहा है—
 नियति की अनन्त शक्ति स्वयं में बहुत समर्थ है। उसके एक संकेत मात्र से राज्याध्यक्ष मिट जाते हैं अर्थात् उनका राज्य समाप्त हो जाता है। विजयमालाएँ सूख जाती हैं अर्थात् जिसको आज विजयश्री मिल रही है। कल उसके पराजय का भी मुख देखना पड़ सकता है और नाश के गीत सुनने पड़ सकते हैं। उस समय ये इन्द्रियाँ तथा शक्तियाँ अशक्त हो जाती हैं और अधिक नहीं हिलती-डुलतीं। भाव यह है कि यहाँ हार-जीत कुछ भी हमेशा रहने वाला नहीं है।

• **विशेष**—यहाँ पर कवि ने नियतिवाद में अपनी आस्था व्यक्त की है तथा उसको महामहिम शक्ति के रूप में स्वीकार किया है। कामायनी में भी कवि ने इस महाशक्ति का महत्त्व व्यक्त किया है।

7. वैभव की यह मधुशाला,
जग पागल होने वाला,
अब गिरा-उठा मतवाला-
प्याले में फिर भी हाला,
यह क्षणिक चल रहा राग-रंग।

शब्दार्थ—जग = संसार। हाला = शराब।

व्याख्या—संसार के वैभवों की तुलना मधुशाला से करते हुए अशोक सोच रहा है—जीवन में उत्थान-पतन आते रहते हैं, किन्तु व्यक्तियों की महत्वाकांक्षा बढ़ती ही रहती है। इस संसार में वैभव मधुशाला के समान है। इसमें लोग अत्यधिक मस्त हैं। वे मदमस्त होकर मतवाले के समान उठते और गिरते हैं, किन्तु उनके प्याले में फिर भी शराब होती है। मनुष्य के जीवन में वैभव का प्रभाव अक्षुण्ण होता है। कभी वह वैभव को प्राप्त कर मतवाला हो जाता है, तो कभी उसके नाश होने से उसे प्राप्त करने के नशे में मतवाला हो जाता है। जीवन का यह हास-विलास और राग-रंग क्षणिक है। इसमें आसक्त होना मनुष्य की भयंकर भ्रान्ति है। यह भ्रान्ति ही उसे युद्ध जैसे दुष्कर्मों में प्रबल करती है।

विशेष—(1) वैभव, पूर्णता को कवि ने मधुशाला का प्रतीक माना है। (2) इस

संसार में आनन्द, प्रमोद एवं वैभव को क्षणिक माना गया है। (3) राग-रंग पद में छेकानुप्रास अलंकार है।

8. काली काली अलकों में,
आलस, मद नत पलकों में,
मणि मुक्ता की झलकों में,
सुख की प्यासी ललकों में,
देखा क्षण भंगुर है तरंग।

शब्दार्थ—अलकों = बालों। मद-नद = नशे के कारण झुकी हुई। झलकों = आभा। ललकों = इच्छाओं। तरंग = उमंग।

व्याख्या—संसार में प्रत्येक वस्तु नश्वर है, यह भाव व्यक्त करते हुए कवि अशोक की चिन्ता के रूप में कह रहा है—इस संसार में प्रेम की उमंग भी क्षणिक है। क्योंकि जीवन में जब प्रेम की उमंग उठती है, तो काली अलकें आलस्य तोड़ता शरीर तथा यौवन के कारण झुकी या अधखुली पलकें अपना प्रभाव क्षणिक ही दिखा पाती हैं। इस प्रकार मणि-माणिक्यों की झलकों में सजा हुआ यौवन तन को प्राप्त करने की इच्छा तथा उसके प्राप्त होने वाले सुख की प्यास क्षणिक ही होती है।

विशेष—(1) कवि संसार की नश्वरता की बात करते-करते अपने व्यक्तिगत अभाव की बात कर जाता है। जिस प्रेम-सौन्दर्य का वह स्वयं भिखारी है, उसको संसार की नश्वरता की छाया में वे भी क्षणिक ही प्रतीत होते हैं। अतः उस ओर भी न जाने की वह प्रेरणा देता है। (2) 'काली-काली' पद में पुनरुक्ति तथा 'मणि-मुक्ता' में छेकानुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है।

9. फिर निर्जन उत्सव शाला,

नीरव नूपुर श्लथ माला,

सो जाती है मधु-वाला,

सूखा लुढ़का है प्याला,

बजती वीणा न यहाँ मृदंग।

शब्दार्थ—निर्जन = सूनी। नीरव = शान्त। श्लथ = शिथिल। मृदंग = एक वाद्य यन्त्र। मधुवाला = शराब पिलाने वाली स्त्री।

व्याख्या—मधुशाला के रूपक के माध्यम से अशोक सोच रहा है—कवि कहता है कि प्रेम की तरंग के समाप्त होने के साथ-साथ ही वह उत्सवशाला या राग रंगशाला भी सूनी हो जाती है। नूपुरों की झंकार शान्त हो जाती है। मस्ती में गले में झूमते हुए हार शिथिल होकर लटक जाते हैं। वह शराब पिलाने वाली मधुवाला भी थक कर सो जाती है। सूखे-शराब के वे प्याले इधर-उधर लुढ़कते हुए दिखायी पड़ते और वीणा की झंकारें तथा मृदंग

की ध्वनि भी शान्त हो जाती है। अर्थात् समस्त सुख और आनन्द के स्थान पर दुःख और विशाद छा जाता है। अतः यह राग रंगशाला भी निरर्थक है, क्योंकि इसका भी नाश हो जाता है। कुछ भी तो स्थिर नहीं है यहाँ।

10. इस नील विषाद गगन में-

सुख चपला सा दुख घन में,

चिर विरह नवीन मिलन में,

इस मरु-मरीचिका-वन में-

उलझा है चञ्चल मन कुरंग।

शब्दार्थ—विषाद = दुःख। चपला = बिजली। दुख-घन = दुखरूपी बादल। मरु-मरीचिका = मरुभूमि में मिथ्या जल की प्रतीति, भ्रमजाल। मन-कुरंग = मन रूपी हिरण।

व्याख्या—संसार में सभी कुछ भ्रम है। इस भाव से अनुप्राणित अशोक सोच रहा है—यहाँ विषाद नीले आकाश के समान है। इस आकाश में दुःख रूपी बादलों का अस्तित्व ही अधिक है तथा इन बादलों में सुख की स्थिति क्षण भर चमक जाने वाली बिजली के समान है। इस संसार रूपी-मरीचिका में विरह चिर है अर्थात् सदैव रहने वाला है, किन्तु चञ्चल मन रूपी हिरण नवीन मिलन की आकांक्षा के कारण सदा उसमें उलझा रहता है।

विशेष—(1) इस पद में 'चपला-सा' पद में उपमा, 'दुखघन' में तथा 'मन-कुरंग' जैसे पदों में रूपक, मरु-मरीचिका में छेकानुप्रास अलंकार है। (2) यहाँ कवि ने बौद्ध दर्शन से प्रभावित होने के कारण दुःख के अस्तित्व को स्वीकार किया है। इसी कारण वह इस नश्वर संसार में सुख को क्षणिक मानता है।

11. आसूँ कनकन ले छल छल-

सरिता भर रही दृगंचल,

सब अपने में हैं चञ्चल;

छूटे जाते सूने पल,

खाली न काल का है निषंग।

शब्दार्थ—सरिता = नदी। दृगंचल = आँखें। निषंग = तरकश।

व्याख्या—जीवन में व्याप्त करुणा और दुःख के बारे में चिन्ता करता हुआ अशोक सोच रहा है—इस संसार में दुख का अधिक अस्तित्व है। इसी कारण नेत्रों की कोर से आँसू छलक-छलककर नदी को भर रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपने में मस्त है। सूनापन या अवसाद मुक्त क्षण धीरे-धीरे समाप्त होते जा रहे हैं। अर्थात् कोई भी व्यक्ति सुख के क्षणों में जीवन बिता रहा दुख के क्षणों का ध्यान नहीं करता। यहाँ समय या काल का तरकश कभी भी खाली नहीं रहता। इस कारण प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही राग-रंग में न फँसकर अन्य दीन-खी व्यक्तियों का भी ध्यान करना चाहिए।

विशेष—(1) इन पंक्तियों में बौद्ध-दर्शन की करुण भावना की प्रतिच्छाया स्पष्ट देखी जा सकती है। (2) कन-कन, छल-छल जैसे पदों में पुनरुक्ति अलंकार है।

12. वेदना बिकल यह चेतन,
जड़ का पीड़ा से नर्तन,
लय सीमा में यह कम्पन,
अभिनयमय है परिवर्तन,

चल रहा यही कब से कुटंग।

शब्दार्थ—वेदना = दुःख। विकल = व्याकुल। नर्तन = नृत्य। कम्पन = अस्थिरता।

व्याख्या—अनन्त काल से जन्म-मृत्यु के चल रहे चक्कर के बारे में अशोक सोच रहा है—इस संसार में दुख का इतना अधिक आधिक्य है कि जड़ और चेतन सभी दुख के कारण व्याकुल है। विषाद-नृत्य के लय-ताल में भी कम्पन ही है। इस संसार में सुख-दुख पीड़ा एवं विषाद का यह परिवर्तन भी अभिनय से पूर्ण है अर्थात् इसमें भी स्वाभाविकता नहीं है। यह कुरीति युगों से इसी रूप में चली आ रही है। इन्हीं चक्करों में पड़कर मनुष्य जीता-मरता आ रहा है।

विशेष—‘वेदना विकल’ पद में छेकानुप्रास अलंकार की छटा विद्यमान है।

13. करुणा गाथा गाती है,
यह वायु बही जाती है,
ऊषा उदास आती है,
मुख पीला ले जाती है,

बन मधु पिङ्गल सन्ध्या सुरंग।

शब्दार्थ—गाथा = कथा। पिङ्गल = ललाई लिए भूरा रंग।

व्याख्या—क्षण-क्षण में प्रत्येक वस्तु ढलकर विनाश की ओर अग्रसर हो रही है। इन तथ्यों पर विचारमग्न अशोक सोच रहा है—इस विषाद-युक्त नीले गगन के नीचे मानव अपनी करुणाभरी कथाओं को ही कहता है। उसका स्वर इस बहती हुई हवा में लुप्त हो जाता है। तब ऐसी स्थिति में वह आशा और आनन्द का सन्देश देने वाली ऊषा भी उदास सी हो आती है और सन्ध्या के समय वह अपना पीला मुख लिए चली जाती है अर्थात् संध्या का समय भी उसके लिए उदास-सा ही होता है। जबकि संध्या अपने अच्छे रंगों में भूरे रंग में ललाई लिए होती है। उस ललाई को सारे वन प्रान्त या पृथ्वी पर बिखेर कर सौन्दर्य प्रयुक्त कर देती है।

विशेष—(1) मनुष्य अपनी आन्तरिक अवस्था की प्रतिच्छवि की बाह्य संसार देखता है। अतः यहाँ पर प्रकृति चित्रण का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव ही माना जा सकता है। कवि की अपनी व्यथा ही रूपायित हो रही है। (2) ‘गाथा-गाती’ ‘वायु बही’ आदि पं

में छेकानुप्रास अलंकार है।

14. आलोक किरन है आती,
रेशमी डोर खिंच जाती,
दृग पुतली कुछ नच पाती,
फिर तम पट में छिप जाती,

कलरव कर सो जाते विहंग।

शब्दार्थ—आलोक = आभा। दृग = आँख। पुतली = पलकें। तम = अन्धकार।

विहंग = पक्षी।

व्याख्या—मुख क्षणिक और दुःख अनन्त हैं, इस तथ्य पर विचार करता अशोक सोच रहा है—प्रातःकाल के समय जब ऊषा आती है तो उसके प्रकाश की किरणें सर्वत्र फैल जाती हैं। वे प्रकाश की किरणें आकाश में रेशमी डोर की भाँति झूल जाती हैं। उनको देखकर आँखों की पुतली नाच उठती है अर्थात् प्रसन्नता में झूमने लगती है। समय के साथ ही वे प्रकाश की किरणें अन्धकार के आंचल में छिप जाती हैं। उस समय कलरव करते हुए सभी पक्षी शान्त होकर सो जाते हैं। इसी प्रकार अक्रम-सा यह क्रम चल रहा है।

ऊषा की आलोकमयी किरणों को देखकर मन में आशा का संचार होता है। किन्तु शीघ्र ही ये आशा की भावनाएँ निराशा में लुप्त हो जाती हैं और संघर्षशील प्राणी चुप हो जाता है।

15. जब पल भर का है मिलना,

फिर चिर वियोग में झिलना,

एक ही प्रात है खिलना,

फिर सूख धूल में मिलना,

तब क्यों चटकीला सुमनरंग ?

शब्दार्थ—चिर = सदैव। झिलना = झेलना। सुमन-रंग = फूल का रंग।

व्याख्या—क्षणिक जीवन में व्यर्थ की चमक-दमक के पीछे भागना व्यर्थ मानते हुए अशोक सोच रहा है—इस संसार में मिलन की घड़ियाँ बहुत थोड़ी ही होती हैं। यहाँ सदैव वियोग को ही झेलना है अर्थात् यहाँ पर विरह के दुःख की तुलना में सुख की घड़ियों की अवधि बहुत छोटी है। इस प्रकृति में समस्त पुष्पों को प्रातःकाल की वेला में खिलना है और खिलने के उपरान्त फिर संध्या के समय सूखकर उनको धूल में मिल जाना है, तब इन फूलों में इतना सुन्दर रंग और लावण्य क्यों होता है ? जब जीवन इतना क्षणिक है तब इस सुन्दरता और लावण्य का क्या महत्त्व ? ऐसी स्थिति में, वास्तव में सभी कुछ व्यर्थ है।

जीवन में जब विषाद का ही महत्त्व है तब इस मन में सुख की क्षणिक भावनाएँ ही क्यों आती हैं और यह मन उस क्षणिक सुख की ललक में प्रसन्नता क्यों अनुभव करता

है? इस अनुभूति का कोई महत्त्व नहीं।

विशेष—(1) सुख की अपेक्षा जीवन में दुख का ही महत्त्व अधिक है। ऐसी कुर
की मान्यता थी। पन्त ने भी इस भाव से अभिभूत होकर लिखा है—

शून्य साँसों का विधुर वियोग छुड़ाता अधर मधुर संयोग,
मिलन के पल केवल दो-चार, विरह के कल्प अपार।

16. संसृति के विक्षत पग रे!

यह चलती है डगमग रे!

अनुलेप सदृश तू लग रे!

मृदु दल बिखेर इस मग रे!

कर चुके मधुर मधुपान भृंग।

शब्दार्थ—संसृति = संसार। विक्षत = घायल। अनुलेप = मरहम। मग = रास्ते
भृंग = भौर।

व्याख्या—संसार को सुखी बनाने का संकल्प मन ही मन में लेते हुए अशोक सोच
रहे हैं—मानवता अनादिकाल से चली आ रही है। अतः चलते-चलते आज सृष्टि के या
संसार के पग घायल हो चुके हैं। इसी कारण वह डगमग कर चल रही है। अतः उसके घायल
पगों में तू मरहम के रूप में लग जा और इसके रास्ते पर कोमल पत्तियों को बिखेर दे, क्योंकि
उनका भी कितने ही भ्रमर रस पान कर चुके हैं। अर्थात् दुःखियों को सुखी और सुन्दर बनाने
के प्रयत्न में ही जीवन की सार्थकता है।

यहाँ अशोक को बोध होता है कि यह अनादिकाल से चली आ रही मानवता को
अनेक स्वार्थपरायण शासकों की महत्त्वाकांक्षा का शिकार होना पड़ा है। अतः आज
आवश्यकता इस बात की है कि इसको तू अपनी करुणा की धारा से रससिक्त कर दे। वैसे
तो अनेक स्वार्थी शासकों ने इसकी संस्कृति रूपी रस का पान किया है पर उन्होंने इसे सींचा
नहीं, अतः आज आवश्यकता इस बात पर ही बल देने की है।

विशेष—(1) इन पंक्तियों से बौद्ध दर्शन की करुणा की भावना का सन्देश मुखरित
हुआ है। अशोक की मनोदशा अत्यन्त ही करुणापूर्ण है, अतः भगवान् बुद्ध के सन्देश
उसके व्याकुल मनःलोक को झकझोर डालते हैं। (2) मधुर-मधुपान पद में छेकानुप्रास
अलंकार है।

17. भुनती वसुधा तपते नग,

दुखिया है सारा अग जग,

कंटक मिलते हैं प्रति पग,

जलती सिकता का यह मग,

बह जा बन करुणा की तरंग,

जलता है यह जीवन पतंग।

शब्दार्थ—भुनती = तपती। अग-जग = सारा संसार। कंटक = कांटे।
सिकता = बालू।

व्याख्या—बुद्ध मत के अनुसार दया-करुणा से संसार को सच्ची शान्ति दिलाने का निर्णय कर अशोक अपने चिन्तित मन से कहता है—यह सारा भूमण्डल तप रहा है। इस पर रहने वाले पर्वत भी संतप्त हैं। सारा संसार ही जड़ और चेतन-आन्तरिक और बाह्य रूप से दुखी हैं। यहाँ पग-पग पर काँटे बिछे हैं। यह जीवन-पथ जलती हुई बालू के समान तप्त है। अतः तू इसकी उष्णता को समाप्त करने के लिए करुणा की उमंग बन जा। यह जीवन-रूपी पतंग जल रहा है। अर्थात् यहाँ कोई भी सुखी नहीं है।

अशोक के मन में भाव उठता है कि सारे भूमण्डल को अर्थात् जड़ और चेतन संसार का सभी शासकों ने अपनी स्वार्थपरायण मनोवृत्ति से शोषण किया है। उनकी वैयक्तिक इच्छा ही सर्वोपरि रही। मानवता के दुःख विषाद इनको अपनी ओर आकर्षित न कर पाये। इसलिए उसका (अशोक का) कर्तव्य है कि वह अपने हृदय में स्थित समस्त करुणा की भावना को इस संतप्त भूमण्डल को शान्ति प्रदान करने के लिए उड़ेल दे नहीं दे तो यह जीवन-रूपी पतंगा इसी प्रकार जलता रहेगा।

विशेष—(1) 'जीवन-पतंग' पद में रूपक अलंकार है। (2) अग-जग, प्रति पग, मधुर मधुपान आदि पदों में छेकानुप्रास अलंकार का सौंदर्य विशेष दर्शनीय है।